

खान-पानादिका प्रभाव

(श्री० पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री)

अपने देशकी यह बहुत पुरानी कहावत है—
जैसा खाये धन, वैसा होवे मन,
जैसा पीवे पानी, वैसी बोले वानी ।

अर्थात् खाने-पीनेकी वस्तुओंका असर मनुष्यके मन पर पड़ा करता है । पर आजकल लोग इन बातोंको दृकियानुसी बताने लगे हैं और खाने पीनेकी मर्यादा जो हमारे वरोंमें पीढ़ियोंसे चली आ रही थी, उसे तोड़कर स्वच्छन्द आहार-विहारी बनते जा रहे हैं । खाने-पीनेकी वस्तुओंका प्रभाव कितना अमिट होता है इसके दिखानेके लिए दो एक घटनाएं नीचे दी जाती हैं—

पंजाबके एक सौम्यमूर्ति क्षत्रिय-बन्धु वचपनसे निरामिष-भोजी थे । वे अत्यन्त मिलनसार और हंसमुख व्यक्ति थे । उन्होंने कभी भी मांस नहीं खाया था और न उनके घर-वाले ही खाते थे । गत दूसरे महायुद्धके समय वे फौजमें भर्ती होकर युद्धके मोर्चे पर गये । परिस्थितिवश वहां उन्हें मांस खाना पड़ा । धीरे-धीरे उन्हें मांस खानेका चस्का लग गया और शराब पीनेकी आदत भी पड़ गई । जब युद्ध बन्द हो गया तो वे लौटकर घर आये । लोग यह देखकर दंग रह गये कि उनका स्वभाव एक दम बदल गया है । जहां वे पहले अत्यन्त मिलनसार और दश आदमियोंमें बैठने वाले थे, वहां अब वे अत्यन्त रूढ़-स्वभावी हो गये थे । बात-बात पर क्रोधित हो लाल-पीले हो जाते थे । लोगों से मिलना-जुलना तो एकदम ही नापसन्द हो गया था । अब खाना तो वरायनाम रह गया था, रोजाना नई-नई किस्मके मांस खाते और शराबमें शराबोर होकर अपने कमरे में मस्त होकर पड़े रहते थे । एक दिन उनके एक घनिष्ठ मित्र जो आजकल दिल्लीके एक कालेजमें प्रोफेसर हैं, उनसे मिलनेके लिये गये, तो उनकी उरु दशा देखकर आश्चर्यसे स्तम्भित रह गये । जहां पहले उनका चेहरा अत्यन्त सौम्य था और बाल घुंघराले थे ; वहां अब वे अत्यन्त रौद्र मुख दीखने लगे थे और बाल तो सूअरके समान मोटे और खड़े हो गये थे । उक्त प्रोफेसर साहबको उनकी यह दशा देखकर अत्यन्त दुःख हुआ और उनके गर्म मिजाजको देखकर उनसे कुछ भी कहनेका साहस नहीं हुआ ।

यह एक सत्य घटना है । मांस-भोजी और शाकाहारी

पशुओंमें एक जबरदस्त भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । मांस-भोजी शेर, चीते, बाघ आदि जानवर अत्यन्त क्रूर स्वभावी और एकान्तप्रिय होते हैं, जबकि शाकाहारी गाय, हरिया आदि अत्यन्त शान्त स्वभावी और संघप्रिय होते हैं, वे अपने समाजके साथ ही रहना पसन्द करते हैं । उक्त महाशय जब शाकाहारी थे, उनमें शाकाहारियोंके गुण थे और अब मांस-भोजी हो जानेपर उनमें मांस-भोजी जानवरों जैसे दोष प्रविष्ट होगये ।

एक और भी सच्ची घटना सुनिये—एक सज्जनने बताया कि वे एक बार पशुघण पर्वमें पट्ट-रस-विहीन भोजन कर अत्यन्त निर्मल परिणामोंके साथ धर्म-साधन कर रहे थे । चूंकि वे वहां अतिथि बनकर गये थे इसलिये प्रति दिन नये-नये घर पर भोजन करने जाना पड़ता था । एक दिन उस रूढ़े-सूढ़े भोजनके करने पर भी रातमें उन्हें अत्यन्त काम-विकार जागृत हुआ और नींद लगते ही स्वप्न-दोष भी हो गया । दूसरे दिन उन्होंने अपने अत्यन्त निजी मित्रोंसे उस व्यक्तिके आचरण-वाचत पूछ-ताछ की, तो पता लगा कि स्त्री और पुरुष दोनों ही आचरण-भ्रष्ट हैं—स्त्री व्यभिचारिणी और पुरुष व्यभिचारी हैं । उक्त सज्जन आश्चर्य-चकित हुए कि एक व्यभिचारी मनुष्यके अबसे व्यभिचारिणी स्त्री-द्वारा बनाये गये भोजनका कितना प्रभाव एक ब्रह्मचारी मनुष्य पर पड़ता है ।

आजकल लोग दिन पर दिन शिथिलाचारी होते जाते हैं और हर एक आदमीके हाथकी बनी हुई वस्तुको जहां कहीं भी बैठकर जिस किसी भी समय पर खाया-पीया करते हैं । यही कारण है कि उनका दिन पर दिन नैतिक पतन होता जा रहा है । जो वस्तु जितने कुत्सित संस्कारी व्यक्तिके द्वारा उपाजित होगी और जितने हीनाचारी व्यक्तिके द्वारा तैयार की जाएगी, उन दोनोंके कुत्सित संस्कारोंका प्रभाव उस वस्तु पर अवश्य पड़ेगा । लेकिन उसके खाने पर उसका अनुभव उसी व्यक्तिको होता है, जिसका आचार-विचार शुद्ध है और खान-पान भी शुद्ध है । जिसका चित्त आर्त-रौद्र ध्यानसे रहित एवं धर्मध्यानरूप रहता है ।

खान-पानकी चीजोंके समान वस्त्र और स्थानका भी

प्रभाव मनुष्यके ऊपर पड़ा करता है। इस विषयमें इसी दिसम्बर मासके 'कल्याण' में प्रकाशित उदासीन सन्त अनन्त श्री स्वामी रमेशचन्द्रजी महाराजके अनुभव ज्ञातव्य हैं। जिन्हें कल्याणसे यहाँ साभार उद्भूत किया जाता है—

दूसरे के वस्त्रों का प्रभाव

“आजकल लोग कहते हैं कि चाहे जिसका खा लो, पी लो और चाहे जिसका वस्त्र पहन लो, कोई हानि नहीं है। पर ऐसी बात नहीं है—मेरे जीवनकी एक घटना है। सन् १९४६ की बात है कि मैं एक बार लायलपुर, पंजाबमें गया हुआ था। वहाँ मैं एक रात्रिको श्री सनातनधर्मसभाके स्थान पर जाकर सोया। मैंने वहाँके चपरासीको बुलाकर उससे कहा कि मुझे रात्रिको यहीं पर सोना है, इसलिए मुझे कोई बिलकुल ही नया विस्तरा लाकर दो। चपरासीने मुझे एक बिलकुल ही नया विस्तरा लाकर दे दिया। मैं उस नये विस्तरेको बिछाकर सो गया। सोनेके परचाव सारी रात मुझे स्मशानघाटके स्वप्न आते रहे और सुदें आते तथा जलते दिखलायी पड़ते रहे। प्रातःकाल उठने पर मुझे बड़ी चिन्ता हुई कि आज ऐसे भूरे स्मशानघाटके स्वप्न क्यों मुझे दिखलाई पड़े। मैंने तुरन्त ही उस चपरासीको अपने पास बुलाकर उसे पूछा—‘भाई! वताओ, तुम मेरे सोनेके लिए यह विस्तरा कहाँसे लाये थे?’ उत्तरमें चपरासीने कहा कि ‘महाराज! एक सेठजीकी माता मर गयी थी, उठ सेठजीने अपनी मरी हुई माताके निमित्त यह नया विस्तरा दानमें दिया था, वही मैंने आपको लाकर दे दिया। मैं समझ गया कि दान चूँकि प्रेतात्माके निमित्त दिया गया था, इसलिए उस दान किये हुए विस्तरमें भी प्रेत-भावना प्रवेश कर गयी और इसीसे मुझे रात भर स्मशानघाटकी बातें दिखलाई पड़ती रहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि जो कर्म जिस भावनासे किये जाते हैं, उसके संस्कार उसमें जाग्रत रहते हैं। इसलिए सबके हाथका खाना-पीना और सबके वस्त्रोंको काममें लेना कदापि उचित नहीं है।’”

स्थान या वातावरणका प्रभाव

“वातावरण और स्थानका भी मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस स्थानपर जैसा काम किया जाता है, वहाँ पर वैसा ही वातावरण उत्पन्न हो जाता है। इसका अपना अनुभव इस प्रकार है—मैं एक बार अपिकेश गया था और वहाँ एक रातको एक आश्रममें जाकर ठहरा। सो जाने पर

मुझे रातभर पटवारियोंके सम्बन्धके स्वप्न आते रहे और भी जमाबंदीकी बातें, तो कभी हिसाब-किताबकी बातें, जो पटवारी किया करते हैं, दिखलायी पड़ती रहीं। प्रातःकाल जागने पर मैं उस आश्रमके प्रबन्धकके पास गया और मैंने उनसे पूछा कि आपके इस स्थान पर अबसे पहले कौन आकर रहते थे? प्रबन्धकजीने बताया कि ‘महाराज, इस स्थान पर २-६ दिनों तक बराबर बहुतसे पटवारी आकर रहे थे और वे यहाँ पर जमाबंदीका काम करते रहे थे। मैं समझ गया कि वस, उन्हीं पटवारियोंके संस्कार इस कर्ममें रह गये हैं, जो मुझे रात भर सताते रहे। जहाँ मनकी सुधमता थी, वहाँ उनका प्रभाव भी प्रकट हुआ। अतः हमारा मन चाहे जिस जगह बैठकर शुद्ध और स्थिर रह सकेगा, यह सोचना गलत है। सोच-समझकर और पवित्र वातावरण वाले स्थान में रहकर भजन-पूजन करनेसे ही मन लगेगा और लाभ हो सकेगा। जहाँ मांसाहार रहते हैं, जहाँ मांस-मछली, अंडे सुगंध लाये जाते हैं, और जहाँ गो-भूक लोग रहते हैं, तथा जहाँ अरलील गन्दे गाने गाये जाते हैं, व्यभिचार होता हो, वहाँ भला मन कैसे शुद्ध रह सकता है और कैसे भजन बन सकता है।’”

(कल्याण, दिसम्बर १९२६)

ऊपरके उद्धरणसे पाठक सहजमें ही जान सकेंगे कि खाने पीनेकी चीजोंके समान ओढ़ने पहननेके वस्त्रोंका और स्थानका भी असर हम पर पड़ता है। मनुष्यके जैसे पवित्र भाव तीर्थ क्षेत्रों पर होते हैं, वैसे अन्यत्र नहीं। इसका कारण यह है कि जिस भूमि पर रह कर साधु-सन्तों एवं तीर्थकरादि महापुरुषोंने विरवके कल्याणकी भावना की है, उनके पवित्र भावोंका असर वहाँके पार्थिव परमाणुओं और वातावरण पर पड़ता है। उस स्थान पर जब कोई दूसरा व्यक्ति पहुँचता है, तब उसके मन पर उसका असर पड़ता है और उसकी बुरी और संश्लेश-पूर्ण मनोवृत्ति बदलने लगती है। इसके विपरीत जिस स्थान पर लोग निरन्तर जुआ खेलते रहते हैं, जहाँ बेश्याई और व्यभिचारिणी स्त्रियाँ दुराचार करती रहती हैं, वहाँका वातावरण भी दूषित हो जाता है, और वहाँ जाने पर निर्मल मनोवृत्ति वाले भी मनुष्योंके मन मलिन होने लगते हैं। यही कारण है कि साधक एवं आराधकको द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की शुद्धि सर्वप्रथम आवश्यक बतलाई गई है।

स्वान्त-पानादिका प्रभाव
(श्री० व० श्रीरामानुज लिखित शतिका)

अपने देशकी महत्कृत पुरानी प्रथातर्ह कि -
जंसा खावे अन्न, मैला हावे फल,
जंसा पीने पानी, मैला बोले पानी।

अश्लील खाने-पीने भी बलुओंका असर अनुभवके मत पर पड़ा कला है। पर आजकल लोग इन बातोंको शकियानुसी बगाने लागे हैं और खाने-पीनेकी शर्मादा जो हमारे धरतमें पीदिशते है नली आरही थी, उसे तोड़कर लान्छन आहार बिहारी करते जा रहे हैं। अब खाने-पीनेकी बलुओंका प्रभाव कितना अप्रिय होता है इसमें दिखानेके लिए दो-एक घटगांठ नीचे दी जाती हैं -

पंजाबके एक शक्तिप्रबन्ध बन्धनसे निरासिध भोजनी थी। उन्हीं का भी मांस नहीं खाया था और न उनके बालले ही खाते थे। दूसरे महाभूतके लक्षण वे कौर्जने भली लोका मुड़के मोचे पा गये। पारिहासिक श दहते हैं उन्हें मांस खाना पड़ा। धीरे-धीरे उन्हें मांस खानेका चस्का लग गया और शराब पीनेकी आदत भी पड़ गई। जब ये मुड़ बन्द हो गया तो वे लौटकर घर आये। लोग यह देखकर दंग रह गये कि उनका स्वभाव एक दम बदल गया था। जहां वे पहले अत्यन्त मिलनसार और दया आदर्शियों के बँटने वाले थे वहां अब वे अत्यन्त हक-स्वभावी हो गये थे। काल-भाव पर अस्सि कोरिधत हो काल-पीले हो जाते थे। लोगोंके मिलना-जुलना को एक दम ही नापसाद हो गया था। किन् अन्न (पात) को बराब नास रह गया था, रोजाना नू-नू किस्मके मांस खाते और शराब में शराबोद होकर अपना कपड़े में मल लंक मड़े हते थे। एक दिन उनके एक धानिध मिना जो आजकल दिवसीके एक कालेजर्जि कोरिधत हैं, उनसे मिलनेके लिए गये, तो उनकी उक्त दशा देखकर आश्चर्यसे स्तम्भित हो गये। जहां पहले उनका चेहरा अत्यन्त लौम्प था और काल घुंचाराले, वहां अब वे अत्यन्त रौद्र मुख दिखने लगे थे और काल तो सूआ के लजान मोटे और रंगे कले-कले हो गये थे। किसीके उक्त कोकेला सा जो उनकी यह दशा देखकर अत्यन्त दुःख हुआ और उसके गरी मिनाजको देखकर उसे कुछ भी कहनेका लाहल नहीं हुआ।

यह एक लक्षण पचना है। मांस-भोजनी और शाकाहारी पशुओंमें

एक जबरदस्त भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सांल-भोजी शेर, नीचे, कप आदि
 जिनका अल्पमात्र ~~अल्पमात्र~~ खाया और एकात्मिक होते हैं, जब कि शाकाहारी
 जगत्, हरिण आदि अल्पमात्र शाका खाया और संघात्मिक होते हैं अपनी शाका
 के साथ ही होता प्रसन्न होते हैं। उक्त महाशय जब तक शाकाहारी थे, उन्हें
 शाकाहारी होने का उपाय था और अब सांल-भोजी हो जाने पर उन्हें सांल-भो-
 जी जानवों जैसे दोष प्रविष्ट हो गये।

एक और भी ^{सम्बन्धी} महत्त्वपूर्ण निर्णय - एक लज्जनने बताना कि वे एक
 बार प्रसुप्ता वर्धन में अर्ध-संविहीन भोजन का रहे थे और कई दिन
 तक अल्पमात्र निर्मले पाणिपानों के साथ चर-साधन करते थे। चूंकि वे
 वहां अविश्रित बन गए थे, इसलिए प्रतिदिन नये नये पत्र पर भोजन
 करते जाते थे। एक दिन उक्त शरमे-बूढ़े भोजनने अपने पत्नी शरमिं
 उन्हें अल्पमात्र कोष-विकास जागत हुआ और मीद लगते ही स्वप्न दोष भी
 हो गया। शुरू के दिन उन्होंने ~~अल्पमात्र~~ अपने अल्पमात्र निरी ~~अल्पमात्र~~
 से उक्त ~~अल्पमात्र~~ व्यक्ति के आन्तक-दांत बूझ-गाधमी, तो पता लगा कि
 ली और दुर्लभ दोनों ही आन्तक-ग्रह हैं-लसी अग्निनाली और
 दुर्लभ वर्धनवाती हैं। उक्त लज्जनने आश्चर्य-चकित हुए कि एक
 अग्नि-चारी मनुष्य के अल्पमात्र अग्नि-नाली ली-द्वारा बताने गये
 भोजनका कितना प्रभाव एक अल्पमात्र मनुष्य पर पड़ता है।

आज इस भोजनदिन पर दिन शिथिली-चारी होते जाते हैं और
 हर एक आदमी के हाथकी बनी हुई निरुत्तम जहां कहीं भी ~~अल्पमात्र~~
 जिस किसी भी लज्जन पर लज्जन-पीसा करते हैं। मही बाल है कि
 उक्तका दिन पर दिन नैतिक पठन हो ~~जाता~~ है। जो बस जितने ~~अल्पमात्र~~
 कुत्सित संस्कारी व्यक्ति के द्वारा उपजायते हो गये और जिन्हें हीना-
 चारी व्यक्ति के द्वारा लज्जन दी जायगी- पकवायी जायेगी ~~उत्तम~~
~~अल्पमात्र~~ ~~अल्पमात्र~~ उक्त दोनों कुत्सित संस्कारों का कारण उक्त बस
 पर अल्पमात्र पड़ता। लेकिन उनके जाने पर उक्तका ^{अल्पमात्र} उत्तम उत्तरी व्यक्ति
 को होता है, जिसका आन्तक-विना शक है और रक्त-दान भी
 शक है। जो सब जिसका चिक आर्त्-पेड़ ध्यान से रहित
 एवं चर-साधन रूप रहता है।

3

मान-पानकी-नीजोंके लगेन लेन आँ एतानका नी-प्रभाव मनुष्य-
के अपर पड़ा जाता है। इस विषयमें अन्तर्भाव इसी दिशाका प्रभाव
कहा जाता है। जाति

इसकी सन्त अतन्त श्री लामो श्री (मोह-मोहजी) महाराज के अनुभव शतवर्ष-
हैं, जिन्हें अन्तर्भाव महां अन्तर्भाव उद्धृत किया जाता है—
दूसरे के बल्लोंका प्रभाव

"आजकल लोग कहते हैं 'बे-बादे जिनका रमा लो, पी लो और बादे जिनका
बल पकत लो, सोई जाने नहीं है। पर ऐसी बात नहीं है—मेरे जीवनकी एक
घटना है। सन् १९५६ की बात है कि मैं एक बार लामलपुर, पंजाबमें गया हुआ
था। वहां मैं एक रातको श्री दत्तात्रयधर्मसिंहके स्थान पर जाकर सोया। मैंने धर्म-
अपराधीको बुलाकर उससे कहा कि 'तुम्हें जानिबो मही पर लोग हैं, इस लिए
तुम्हें सोई बिलकुल ही नया बिल्लरा लाकर दो। अपराधीने तुम्हें एक बिलकुल
ही नया बिल्लरा लाकर दे दिया। मैं उस नये बिल्लरेको बिल्लकर ले गया। सोनेके
पश्चात् सारी रात तुम्हें स्मशानघाटके स्वप्न आते रहे और सुबह आते तब जल्से
दिले लामो पड़ते थे। प्रातःकाल तुम्हें पर तुम्हें बड़ी निन्ता हुई कि आज ऐसे तुम्हें
स्मशानघाटके स्वप्न क्यों तुम्हें दिखलायी मरे। मैंने तब ही उस अपराधीको अपने
पास बुलाकर उसे पूछा—'भाई! बताओ, तुम मेरे सोनेके लिए यह बिल्लरा कहां-
से लाये थे?' उत्तरमें अपराधीने कहा कि 'महाराज! एक सेठजीकी माता मर गयी
थी, उन सेठजीने अपनी मरी हुई माताके निमित्त यह नया बिल्लरा दानमें
दिया था, वही मैंने आपको लाकर दे दिया।' मैं हसकर गया कि दान-श्रुति
प्रेमात्मा के निमित्त दिया गया था, इस लिए उस दान किसे तुम्हें बिल्लरेकी
प्रेरणाकरा प्रवेश कर गयी और इसीसे तुम्हें रातभर स्मशान-घाटकी सोनें दिखलाई
पड़ती ही। इससे यह लिच्छु होता है कि जो कर्म जिस भावकासे किये जाते हैं,
उसके संस्कार उत्तम जाग्रत होते हैं। इस लिए सबके सुखका राना-पीना
और सबके बल्लोंको कापके लेना कदापि उचित नहीं है।"

स्थान या वातावरणका प्रभाव

"वातावरण और स्थानका भी मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस स्थान पर
जैसा काम किया जाता है, वहां पर जैसा ही वातावरण उत्पन्न हो जाता है। इसका
अपना अनुभव इस प्रकार है— मैं एक बार अटबिदेश गया था और वहां एक रात-
को एक आश्रममें जाकर ठहरा। सो जाने पर तुम्हें रात भर पटभारियोंके स्वप्नके स्वप्न
आते रहे और कभी जमाखंडीकी सोनें, तो कभी हिसाब-कितबकी सोनें, जो पटकरी
किया करते हैं, दिखलायी पड़ती ही। प्रातःकाल जागते पर मैं उस आश्रमके प्रभावक
के पास गया और मैंने उनसे पूछा कि आपके इस स्थान पर अबसे पहले कौन आकर

हते थे, प्रबन्धकजीने बताया कि 'महापूजा, इस स्थान पर ५-६ दिनों तक बराबर चलते
 थे परन्तु भी आकर रहे थे और जहाँ जहाँ भी जाया करते थे वे 'ईश्वर' का नाम
 कि वह, उसी 'मन्त्रों' के संस्कार इस कर्म में रह गये हैं, जो उनके रात भर सुनाते रहे
 जहाँ मन्त्री सुक्ष्मता थी, वही उन्नत प्रभाव भी प्रकट हुआ। अतः हमारा मन चाहे
 जिह जगह बैठकर शुक और सिमा रह सकेगा, यह सोचना गजब है। लोक संप्रदाय
 और पवित्र वातावरण के स्कारों तक भजन-पूजन करते ही मन लगेगा और
 लाभ हो सकेगा। जहाँ मोरगुली रहते हैं, जहाँ मंस-मच्छली, अंड-मो-मो
 जाते हैं, और जहाँ जो भक्षक लोग रहते हैं, तथा जहाँ अश्लील गन्धे गाने गाने जाते
 जाते हैं, अभिचार होता हो, वहाँ भला मन कैसे शुक रह सकता है और कैसे
 भजन बन सकता है ?"

(कल्याण, दिनांक १९५६)

ऊपरके उद्धरणसे पठक सहजमें ही जान सकेगें कि याने
 पीतकी चीजोंके समान ओढ़ने-पहननेके वस्त्रों का और स्थान का भी
 असर हम पर पड़ता है। मनुष्यके जिते पवित्र भाव तीर्थ क्षेत्रों पर
 होते हैं, जैसे अन्न नही। इसका कारण यह है कि जिन प्राणियों पर
 रहकर साधु-संतों एवं तीर्थंकरादि महापुरुषोंने विश्वके कल्याण
 की भावना की है उनके पवित्र भावोंका असर वहाँके पार्थिव
 परमाणुओं और वातावरण पर पड़ता है। उक्त स्थान पर जब
 कोई दूखरा व्यक्ति पहुंचता है, तब उसके मन पर उतका असर
 पड़ता है और उसकी बुरी और संकेश-पूर्ण मनोवृत्ति बदलने
 लगती है। इसके विपरीत उक्त स्थान पर लोग निरत
 हुआ खेले रहते हैं, जहाँ वेष्टमण्ड और अभिचारिणी
 विद्याएं सुराचार कीली होती हैं, वहाँका वातावरण भी दूषित
 हो जाता है, और वहाँ जाने पर निर्मल मनोवृत्तिवाले मनुष्यों
 के मन मलिन होने लगते हैं। यही कारण है कि साधक एवं
 आराध्यक को द्रव्य, क्षेप, काल और भावकी शुद्धि एवं प्रथम
 आदर्शक कहलाई गई है।